मूल अधिकार बनाने की चुनौती

गिरीश्वर मिश्र

भारत के सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा पहुंचाने की कोशिश बड़ी लंबी और कठिन होती दिख रही है। जब भारत में अंग्रेजों का राज था, तब बड़ौदा के महाराजा ने 1891 में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था शुरू की थी। पश्चिम में एक रियासत में भी इसी तरह का प्रयास हुआ था और अन्य कई क्षेत्रों में भी ऐसी कोशिश हुई थी। गुलामी के दिनों में देश के राष्ट्रीय नेतृत्व ने औपनिवेशिक शासकों से पूरे देश में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने पर जोर दिया था, पर अंग्रेजों को सत्ता सुख बनाए रखने के चलते यह रास नहीं था और यह मांग अस्वीकृत हो गई। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने निरक्षरता को देश के लिए बेहद ''शर्मनाक' माना और कहा कि अंग्रेज जब भारत पहुंचे थे तब देश ज्यादा साक्षर था। गांधी जी और उनके कई सहयोगियों के प्रयास से देश में शिक्षा की चेतना जगी और निरक्षरता की चुनौती से लड़ने की देसी तकनीक पर काम शुरू हुआ ताकि हर देशवासी एक सार्थक बुनयादी शिक्षा जरूर पा सके। इसके बाद देश को बीसवीं सदी के मध्य आते-आते जब स्वतंत्रता मिली तो देश के कर्णधारों ने इस ओर ध्यान दिया।दस साल के अंदर सभी बच्चों को बेसिक शिक्षा देने और निरक्षरता उन्मूलन का लक्ष्य बनाकर प्रयास शुरू हुआ, पर संविधान का यह वादा पूरा न हो सका। साक्षरता के लिए नई नीतियां और तरीके अपनाए गए। बीसवीं सदी के अंत तक यह साफ हो गया कि इसके लिए देश के अपने संसाधन नाकाफी हैं और विदेश की सहायता चाहिए। बाहर से आर्थिक सहायता ही नहीं विशेषज्ञ भी आए और उनके साथ निरंतर संवाद भी चलता रहा। इसके चलते साक्षरता के आंकड़ों में जरूर वृद्धि हुई। पिछड़े क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा भी बढ़ी और कई नई संस्थाएं पनपीं। यहलड़ाई इक्कीसवीं सदी में एक नए संकल्प के साथ शुरू हुई। ''सर्व शिक्षा अभियान' की एक बड़ी ही महत्वाकांक्षी मुहिम छेड़ी गई। अपने संसाधनों की सहायता से साक्षरता के लिए नई पहल हुई। लेवी (सेस) लगाई गई और इस योजना के लिए अतिरिक्त संसाधन जुटाए गए। स्कूलों की आधार-संरचना को उन्नत करने की कोशिश भी शुरू हुई। बच्चों की स्कूलों में दाखिला तो जरूर बढ़ा पर गुणात्मक रूप से समृद्ध शिक्षा का सपना दूर ही बना रहा। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान भी शुरू हुआ ताकि माध्यमिक स्तर की शिक्षा सब तक पहुंचा दी जाए। सूचना प्रौद्योगिकी को भी स्कूल में लाने की कोशिश शुरू हुई। इस बीच संसद ने संविधान में संशोधन करते हुए शिक्षा को मूल अधिकार बनाया जो अभी तक सिर्फ एक निदेशात्मक नियम भर था। अगस्त 2009 में संसद ने ''6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिनियम' स्वीकार किया। भारतीय शिक्षा के लिए यह एक युगांतरकारी घटना थी। इस अधिनियम में प्रावधान हुआ कि अगले पांच वर्षों में यह कार्य रूप ले लेगा। वर्ष 2015 इस अधिनियम को लागू करने की तिथि है। प्रश्न है कि क्या सभी बच्चों के लिए शिक्षा के मूल अधिकार देने का सपना पूरा हुआ? इस प्रश्न का शायद हां या नहीं में कोई स्पष्ट उत्तर अभी नहीं दिया जा सकता, पर हमारे सामने कई सवाल मुंह बाए खड़े हैं। क्या सिर्फ कानून बना देना ही काफी है? क्या एक केंद्रीय कानून काम कर सकेगा? यह प्रश्न भी उठता है कि क्या यह कानून गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया कराने के लिए पर्याप्त है। सवाल और भी हैं। बच्चे स्कूलों में क्यों नहीं हैं, क्यों माता-पिता बच्चों को निजी स्कूलों में रखना चाहते हैं, क्या मात्र शिक्षा की गुणवत्ता ही इसका कारण है, सरकारी स्कूलों का प्रबंधन कैसे दुरुस्त किया जाए। साथ ही शिक्षा के मामले में केंद्र-राज्य के रिश्ते और शिक्षा के अधिकार पर भी विचार बेहद आवश्यक है। बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के विस्तार के जो प्रयास पिछले दो दशक में हुए हैं, इसकी वजह से इनके स्वरूप में भी बदलाव आया है। अब यह प्राथमिक स्कूलों में दाखिले तक ही सीमित नहीं रह गया है। छात्रों की स्कूल में उपस्थिति को बढ़ाने, कक्षा में उनकी सक्रिय भागीदारी को बढ़ाने, स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति को कम करने और माध्यमिक स्तर तक शिक्षा की प्रासंगिकता सुनिश्चित करने के मुद्दे भी शामिल हो गए हैं। अब पूरा जोर माध्यमिक स्तर तक शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने और स्कूल तक बच्चों की पहुंच के साथ दाखिला बढ़ाने पर भी है। भारत के संविधान ने सभी बच्चों को सीखने और विकसित होने के प्रति प्रतिबद्धता दर्शाई थी, लेकिन विभिन्न समूहों के बीच अवसरों को लेकर बड़ी विषमता है। सामाजिक रूप से वंचित अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, मुस्लिम बच्चों, लड़कियों और वो बच्चे जो किन्हीं कारणों से अक्षम हैं, त्रासदी प्रभावित बच्चे और वो जो शहर की मलिन बस्तियों में रहते हैं, अभी भी बड़ी तादाद में शिक्षा से वंचित हैं। विगत वर्षों में गुणवत्ता का अर्थ भी बदला है। अब उसमें उन दशाओं को भी शामिल किया जा रहा है जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को संभव बनाती हैं। गुणवत्ता सिर्फ अध्यापक की जिम्मेदारी नहीं है। वह एक पूरी व्यवस्था का भी गुण है। कक्षा में क्या घटित हो रहा है, यह कई बातों पर निर्भर करता है। अत: गुणवत्ता की बात करते समय विद्यालय का भौतिक स्वरूप और सुविधाएं, सीखने-सिखाने के लिए उपलब्ध सामग्री, कक्षा में चलने वाली प्रक्रियाएं, मूल्यांकन की विधि, अध्यापकों को मिलने वाला अकादमिक सहयोग और समर्थन और स्कूल चलाने में समुदाय की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। स्कूल के विकास में समुदाय की भागीदारी कैसे बढ़े और स्कूल के स्तर पर प्रबंधन और नियोजन में अध्यापक को भी स्थान मिले, धन के अभाव, व्यवस्था में भरोसे की कमी आदि समस्याओं से भी कड़ाई से निपटना होगा। गौरतलब है कि पिछले पंद्रह बीस वर्षों में किस्म-किस्म के निजी विद्यालयों की बाढ़ आ गई है। इनकी संख्या इतनी बढ़ गई है कि निजी (प्राइवेट) शिक्षा ने प्राथमिक शिक्षा का मूल स्वभाव ही बदल डाला है। एयर कंडीशंड स्कूल बदलाव के तहत अब अंतरराष्ट्रीय शैक्षिक मानकों का पालन करते हैं और काफी ऊंची फीस लेते हैं। इन स्कूलों का फैशन ऐसा बढ़ा है कि निजी स्कूल अब मलिन बस्तियों और गावों में खुल रहे हैं, जहां कोई भी सुविधा नहीं है। इनमें से कई गैर मान्यताप्राप्त होते हैं और यहां शिक्षकों की गुणवत्ता, वेतन और सेवा की दशाएं इतनी खस्ताहाल हैं कि अध्यापकों में बच्चों को अच्छी तरह पढ़ाने का उत्साह ठंडा पड़ जाता है। आज जब देश के लिए नई शिक्षा नीति बनाई जा रही है तो प्राथमिक शिक्षा के पूरे परिदृश्य पर गौर करना होगा, व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने का तंत्र विकासित करना होगा और क्रांतिकारी कदम उठाने होंगे। आज के तथाकथित ज्ञान युग में देश की भागीदारी की यह न्यूनतम आवश्यकता है कि प्राथमिक शिक्षा को पटरी पर लाया जाए।

प्रश्न है कि क्या सभी बच्चों के लिए शिक्षा के मूल अधिकार देने का सपना पूरा हुआ? इस प्रश्न का शायद हां या नहीं में कोई स्पष्ट उत्तर अभी नहीं दिया जा सकता, पर हमारे सामने कई सवाल मुंह बाए खड़े हैं। क्या सिर्फ कानून बना देना ही काफी है? आज जब देश के लिए नई शिक्षा नीति बनाई जा रही है तो प्राथमिक शिक्षा के पूरे परिदृश्य पर गौर करना होगा, व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने का तंत्र विकासित करना होगा और क्रांतिकारी कदम उठाने होंगे